भारतीय उपन्यास
अंतिम दशक : 1991-2000

संपादक
डॉ० शशि भारद्वाज

सहायक संपादक
डॉ. कैलाश नीहारिका
डॉ० नूतन पांडेय
अनिता अलघ

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम,
नई दिल्ली-110066

2960 HRD/06—1A

कोंकणी उपन्यास

डॉ. चंद्रलेखा

भारतीय उपन्यास विधा पर जब हम सोचते हैं तब हमें पता चलता है कि हमारे भारतीय साहित्य में, समाज में, जीवन में, ब्रिटिशों के आगमन के बाद आधुनिक काल का, नए विचारों का उदय हुआ। विद्वानों का मानना है कि इसी समय से, हमारे देश में नई-नई साहित्यिक विधाओं का प्रारंभ हुआ। इसके साथ-साथ हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि हमारे देश में बहुत सारी भाषाएँ बोली जाती हैं, उन सबका तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि हमारी सब भाषाओं का विकास एक-सा नहीं हुआ। अपने-अपने प्रदेशों में, अपने-अपने इतिहास में तथा भिन्न सामाजिक परिस्थितियों में हमारी भाषाएँ अलग-अलग विकासात्मक स्वरूपों में पनप रही हैं। परिणाम स्वरूप उनकी गतिविधियाँ अपने अलग-अलग समय पर होती दृष्टव्य होती हैं। विद्वानों का मानना है कि भारत देश में, बंगला और मराठी भाषा में उपन्यास का उद्भव हुआ। इसका कारण यह माना गया है कि अंग्रेजों का आधिपत्य सबसे पहले बंगाल में ही स्थापित हुआ। हिंदी प्रदेशों में वह आधिपत्य सबसे बाद में स्थापित हुआ। इसीलिए हिंदी में उपन्यास का जन्म भी बहुत बाद में हुआ।

भारत देश का ही एक हिस्सा, गोवा प्रदेश पुर्तगालियों के शासन में 451 वर्ष तक रहा फिर भी गोवा प्रदेश की कोंकणी भाषा में, साहित्यिक गतिविधियाँ विकासात्मक रूप में उतनी विकसित क्यों नहीं रहीं? यह शोध का विषय हो सकता है। शायद एक कारण यह भी हो सकता है कि शुरू-शुरू में यहाँ के शासकों ने यहाँ की भाषा पर पाबंदी लगाकर पुर्तगाली भाषा को ही शासकीय भाषा बना दिया। बाद में यहीं पर तुलनात्मक शब्दकोश भी बनाए गए, पर सब कुछ कोंकणी भाषा के विकास को

साहित्यिक आधुनिक गतिविधियों तक नहीं ले जा पाया। यहाँ पर आधुनिक यूरोपीय भाषा परिवार में पुर्तगाली भाषा का क्या स्थान था, उस पर भी सोचा जा सकता है। अंग्रेज़ी के कारण बंगाली और मराठी आगे बढ़ी पर पुर्तगाली भाषा के कारण गोवा की कोंकणी भाषा उतनी आगे क्यों नहीं बढ़ पाई, इसका उत्तर भी वहीं खोजना पड़ेगा। इसके और कारण भी हो सकते हैं पर इनको नज़र अंदाज़ करके देखें तो गोवा प्रदेश की नागरी लिपि में लिखित कोंकणी में 1991 से लेकर सन् 2000 तक सिर्फ छः उपन्यास मिलते हैं जिसे यहाँ पर कादंबरी या नवलकथा भी कहा जाता है। वैसे रोमन लिपि की कोंकणी में भी उपन्यास परंपरा है। जहाँ तक कन्नड लिपि का सवाल है वहाँ उनके विद्वानों का मानना है कि उपन्यास परंपरा इसी लिपि में सबसे ज़्यादा पनपी है। पर हमें अपना ध्यान नागरी लिपि की कोंकणी की ओर केंद्रित करना है क्योंकि कॉलेज, विश्वविद्यालय और राजकीय शासन सबके लिए नागरी लिपि की कोंकणी को ही अपनाया गया है। वैसे ध्यान में रखने वाली बात यह भी है कि कोंकणी भाषा अलग-अलग लिपि के कारण बिखरी पड़ी है। उन सबको इकट्ठा करके उन्हें नागरी लिपि में लिप्यंतरण करके अथवा गोवा की कोंकणी में कोंकणीकरण करके लाया जा सकता है। तभी गोवा प्रदेश की कोंकणी भाषा और समृद्धि हो सकती है। जब तक कोंकणी भाषी यह कार्य नहीं कर पाते तब तक रोमन, कन्नड और मलयालम कोंकणी लिपि के इतिहास अलग अलग बिखरे ही रहेंगे। कोंकणी भाषा का साहित्यिक इतिहास तैयार करने में इन्हें संजोना होगा। पर जब तक यह बात 'कोंकणी प्रेमी' की समझ में नहीं आती तब तक गोवा की धरती पर रचा गया नागरी लिपि का साहित्य पढ़कर, उन्हीं पर ही लेख लिखने पड़ेंगे। इस लेख की यह सीमा भी है और मजबूरी भी। सन् 2000 तक जो साहित्य गोवा में रचा गया है वह अपने ही अक्षांशों और रेखांशों में घूम रहा है। इन उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं-

1. ***कार्मेलीन*** - दामोदर मावज़ो - 1991 / पृ. 200.
2. ***अंजनी*** - एच. रत्नाकर राव - 1994 / पृ. 180.
3. ***काळी गंगा*** - महाबळेश्वर सैल - 1996/ पृ. 280.
4. ***भोगदंड*** - हेमा नायक - 1997/ पृ. 202.
5. ***पाषाण कळी*** - ज्योति कुंकळकार - 1998/ पृ. 175.
6. ***शक्तिपात*** - अवधूत कुडतडकार - 2000/ पृ. 196.

गोवा की धरती के प्रश्नों को उजागर करनेवाले उपन्यासकार दामोदर मावजो के मूल कोंकणी उपन्यास को साहित्य अकादमी, गोवा कला अकादमी तथा कोंकणी भाषा मंडल से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इसका हिंदी में अनुवाद हो चुका है।

कार्मेलीन में प्रारंभ में ही नायिका के जन्मदिन का ज़िक्र है। कुवैत में जहाँ पर वह काम करती है उसका वर्णन है। आज जुम्मा है। अपने यहाँ जैसे इतवार की छुट्टी वैसे ही इन अरब लोगों के लिए जुम्मा है। कार्मेलीन को अपने जन्म-दिन के अगले दिन ही कार्ड मिलता है, जिसे देखकर उसे अपनी बेटी बेलिंदा की याद आती है। इसी झूले पे सवार वह कभी वर्तमान में और कभी भूतकाल में झूलती रहती है। अपनी बेटी की खातिर ही वह तिल-तिल कर जलती रही है। वह एक जलती शमा की तरह है, जो अपनी बेटी के सुनहले भविष्य की कामना में जलती है, उजाला देती है। सारी मुसीबतों की जड़ उसका पति जुजे है। शराबी, जुआरी, गैर जिम्मेदार पति और पिता, एक गया गुज़रा आदमी है। पति-पत्नी का संबंध उसके लिए सिर्फ शारीरिक है। पत्नी उसके लिए मशीन है, जब चाहा ऑन किया, ऑफ किया। वहाँ भावना का प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तक कि बेटी बेलिंदा के जन्म के दो-तीन महीने बाद ही, एक रात वह नशे में धुत पड़ा है और कार्मेलीन का फायदा उठाता है जुजे का दोस्त रूजार। बचपन से ही वह परिस्थितियों का शिकार रही है। टाइफाइड की महामारी में माँ-बाप चल बसे। अपनी फूफी के यहाँ उसे रहना पड़ा, जिसे वह माँ कहकर पुकारती और फूफे को पप्पा कहती थी। उन दोनों का बेटा आग्नेल है। ज़िंदगी फिर चलने लगी। कॉर्मेलीन और आग्नेल दोनों बड़े होते गए। अनजाने ही यौवन की पहली फुहार ने दोनों को बहकाया, कार्मेलीन ने आग्नेल का विश्वास किया। उस पर सबकुछ लुटाया। पर आग्नेल कच्चा निकला, अपनी माँ के कहने पर, पर उसने दहेज के लालच में अफ्रीकन लड़की से शादी कर ली। इधर थोड़े समय बाद पप्पा ने कार्मेलीन को भी जुजे के साथ शादी के लिए राजी किया। शादी के पहले और बाद में भी वह लापरवाह ही रहा। बेटी बेलिंदा के जन्म के बाद उसकी लापरवाही और बढ़ती गई। गरीबी और भूख मुँहफाड़े खड़े थे। जुजे का एक भाई है बस्त्यांव जो पड़ोस में ही रहता है। उसने अपनी मर्जी से शादी की है इसलिए माँ और भाई में आपसी संबंध नहीं हैं। उसकी पत्नी का नाम है इजाबेल। वह हमेशा कार्मेलीन का साथ देती है उसका पति बस्त्यांव खलासी है। इजाबेल के सहारे ही जमीन खरीदता है। इजाबेल मेहनत करती है और गृहस्थी

चलाती है। गोवा स्वतंत्र हुआ। कार्मेलीन के पति की नौकरी भी छूट गई, बेकार और पियक्कड़ पति को किसी बात की चिंता ही नहीं है। बेलिंदा अब बड़ी हो रही है, उसे स्कूल भेजना है, उसका भविष्य बनाना है। इन्हीं दिनो कार्मेलीन को अपनी सहेली एल्स मिलती है। उसका पति कुवैत में है। वही उसे समझाती है। आरशें गाँव की कुवैतवाली औरत कार्मेलीन की मदद करती है। काफी सोच विचार के बाद वह कुवैत जाने के लिए तैयार होती है। कुवैत में निसार और नोरीया के यहाँ आया का काम स्वीकारती है। थोड़े समय बाद निसार कार्मेलीन के शरीर को चाहने लगता है पर उसमें प्रेम और इंसानियत दोनों हैं। दिल खोलकर दीनार लुटाता रहता है, जिसे कार्मेलीन संभालकर रखती है। बेलिंदा को वह उपहार स्वरूप फ्रॉक भी देता है। बेलिंदा अब बड़ी हो गई है। जुजे की मौत के एक वर्ष बाद जब कार्मेलीन घर आती है तब बेलिंदा कहती है- "नहीं मम्मी, अब की बार जाना मत। मैं फेल नहीं होऊँगी। अब मैं कुवैत जाऊँगी।

कार्मेलीन को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। जिस कुवैत की छाया तक बेलिंदा पर न पड़े, इसकी वह प्रार्थना करती थी। उसका फोटो तक कोई अरबी न देखे, इसलिए उसने झपट लिया था। वही उससे कहती है-

"मैं पासपोर्ट बनवा लूँगी और तुम्हारी तरह कुवैत जाऊँगी। तुम्हारी तरह कुवैत जाऊँगी तुम्हारी तरह कमाऊँगी।''

तभी बेलिंदा के गाल पर जोरदार तमाचा पड़ा। पूरी कहानी कार्मेलीन के आसपास घूमकर यहीं पर समाप्त हो जाती है।

दामोदर मावज़ो के लिए उनके उपन्यास का स्रोत सोर्स ऑफ इंफॉरमेशन है। अपनी दुकानदारी के व्यवसाय में उन्हें ऐसी जानकारी मिलना सहज है। लेखक खुद इन बातों का जिक्र कर चुके हैं। शायद इसी कारण संस्कृतिकरण के संकर से संकरण हुआ, वे आउटसायडर होकर इनसायडर की बातों को, मूल्यों को ऊपरी तौर पर ही चित्रित कर पाए हैं। उनमें संकरण के बाद ही देशजता या संस्कृतिकरण की गहनता नहीं आ पाई। शायद इसीलिए यह कृति एकालापी बन गई है। संकर से संकरण, संकरणात्मक उससे भी आगे जाकर हमारे देश के संगीत में जैसे अलग-अलग समय पर अलग-अलग राग, रागों का मिश्रण हुआ है, अलग घराने बने हैं उसके मिश्रणात्मक संकरण की भूमिका तक भी यह कृति पहुँच नहीं पाती। समीक्षक मीनाक्षी मुखर्जी कहती हैं कि हमारे देश के उपन्यास साहित्य में, उसके

विकास में क्रिश्चियनों का योगदान कितना है, उस पर अध्ययन होना चाहिए। तुलनात्मक साहित्य के समीक्षक डॉ. पाटिल कहते हैं कि हमारे देश में हमारे ब्राह्मण लेखकों ने क्रिश्चियन उपन्यासों में कितना योगदान दिया है, उस पर सोचना भी आवश्यक है। आज हमारे जीवन में जो कार्निव्हलीकरण हो चुका है, हो रहा है, जो हमारी फिल्मों, टी.वी. सीरियलों, गानों के एलबम, नाटक, संगीत आदि में व्यक्त हो रहा है, उसे पकड़ना और साहित्य में निरूपित करना भी आवश्यक लग रहा है। साहित्य में केवल 'क्लास' ही क्यों हो? 'मास' भी तो उतना ही महत्वपूर्ण है। कार्मेलीन की 'क्लास' ने 'मास' को सिर्फ दिखाया ही नहीं बल्कि 'नीचा दिखाने' का प्रयत्न किया है। उसके कार्निव्हलीकरण तक तो हम अभी सोच ही नहीं पाए।

फिर भी कार्मेलीन का मानसिक संघर्ष पूरे उपन्यास में दृष्टिगत होता है। पाप-पुण्य, कलंक-मुक्ति, संघर्ष-समन्वय यहाँ तक कि अपने खुद के व्यक्तित्व के साथ जूझती ही रहती है। माँ-बाप चल बसने के साथ-साथ उसके अंदर का लड़कपन मर गया। आग्नेल के साथ धोखा खाने पर उसके अंदर की प्रेमिका मर गई, शादी में धोखा खाने पर, उसके अंदर की पत्नी मर गई, रूज़ार से लुटने पर उसके अंदर की औरत मर गई। सबको झेलती हुई कार्मेलीन सिर्फ अपनी बेटी बेलिंदा के लिए जिंदा रह जाती है। उपन्यास के अंत तक उसका यही रूप जीवित रहता है। तभी तो बेटी बेलिंदा जब कुवैत जाने का विचार सुनाती है। तब इस माँ का वही रूप बेटी को थप्पड़ मारकर उसे वहाँ जाने से रोकता है।

कार्मेलीन के शिल्प के बारे में सोचा जाए तो लगता है कि कथन और कथन भंगिमा का गुंफन जितना सहज होगा, शिल्प और शैली उतने ही असरकारक बनेंगे। भाषा का प्रयोग तो माध्यम रूप में होता है। इस अर्थ में शिल्प, शैली अनुकूल ही कहे जाएँगे। पात्र के अनुरूप क्रिश्चियन परिवार अपनी संस्कृति में चित्रित हुए हैं। क्रिसमस का वर्णन, शादी, गृहप्रवेश में लैटीन लावदात अर्थात मंगलगाना, बेस्ट मैन का चित्रण सहज रूप में हुआ है। बेटे का बप्तिसमा अर्थात् चर्च में जाकर धार्मिक विधि करना आदि भी अंकित हुए हैं। उपन्यासकार कथानक की पृष्ठभूमि में जब कुवैत घूमता है तब वहाँ के समाज की शब्दावली आती है। उदाहरण के तौर पर ताल-ताल = बुलाना, सुलेमानी = चाय, जुम्मा = शुक्रवार, सलाम आलेकुम, शाराजारा = गिरजाघर, तोऊझ = रेतीला तूफान, सब्ला = बैठक का कमरा आदि शब्दावली कुवैत के वातावरण को उजागर करती है। भाषा शैली

अलंकृत और काव्यमय नहीं है पर अपनी गद्यात्मक मर्यादा में उचित ही है। कहीं-कहीं पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग भी किया गया है। कार्मेलीन का नाम और कोई होता तब भी एक औरत की त्रासदी में फर्क न पड़ता। मूल्यसंक्रमण की समस्या भी अपना नया आयाम लेकर चित्रित हुई है। उसे किसी एक समाज तक सीमित रखना साहित्यिक दृष्टि से उचित नहीं है। कार्मेलीन अपने मानवीय दोषों के साथ ही ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाती है। इस कृति का हिंदी अनुवाद नारायण सेजबलकर जी ने किया है।

अंजनी के लेखक एच. रत्नाकर राव हैं। इस कृति पर लिखने के पूर्व एक छोटी-सी टिप्पणी करना आवश्यक लगता है। सन् 1994 में कोंकणी में विराट नाम की कृति भी आई थी। जिसे लिखनेवाले थे प्रसिद्ध कथाकार चंद्रकांत केणी। लेखक खुद उसे कथा या उपन्यास मानने से इंकार करते हैं। इतना ही नहीं उसमें एकसूत्रता नहीं है ऐसा भी कहते हैं। इसलिए विराट पर कुछ लिखना आवश्यक नहीं लग रहा।

किसी भी साहित्यक कृति में भाषा महत्वपूर्ण साधन होती है। साहित्यकार की भाषा पर उसकी मातृभाषा का, प्रदेश भाषा का, शिक्षण भाषा का, संचार माध्यम की भाषा का प्रभाव होता ही है। ***अंजनी*** के लेखक का कहना है कि उनकी इस कोंकणी कादंबरी में संस्कृत, मराठी, अंग्रेज़ी, पोर्तगीज़, उर्दू और थोड़ी बहुत फ्रेंच भाषा भी मिल चुकी है। गोवा की कोंकणी में नागरी लिपि में कोंकणी लिखनेवाले और रोमन लिपि में लिखनेवालों के शब्द भंडार अलग-अलग होते हैं। लेखक क्रिश्चियन समाज की कोंकणी का उदाहरण देते हैं-

"इनास आयला रे?" (इनास आया है?)

"ना" ताणें पळोवन सांगले, "तो दुयेंत आसा, आयंज फिफटीन डेअस मायज"

भावार्थ-ना, उसने नीचे देखते हुए कहा, वह बीमार है, आज पंद्रह दिन से ज़्यादा हो गए।

उपर्युक्त कोंकणी वाक्य में 'फिफ्टीन', डेअस दोनों शब्द अंग्रेज़ी के हैं और दुयेंत तथा 'मायज़' पुर्तगाली भाषा के हैं। इसी तरह कन्नड लिपि की कोंकणी में कन्नड भाषा के शब्द आज कोंकणी के हो गए हैं। इस कांदबरी में 'अंजनी' के जीवन की कहानी है। कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते वह मेंगलोर-मंगळूर के लड़के से जो गोवा बैंक में मैनेजर है, उम्र में उस से बड़ा है, अंजनी को

प्यार हो जाता है। माता-पिता की रज़ामंदी से दोनों की शादी भी हो जाती है। शादी के बाद अंजनी मंगळूरवालों की तरह कोंकणी भाषा सीख गई। अम्मा के साथ फ्रेंच शब्द भी आत्मसात कर लिए। नौकरी करने के लिए मॉडलिंग करने की बात सोची। यहीं से अंजली और पति रघु के बीच में विचारों की असमानता प्रकट होने लगी। अंत में अंजनी को पति का घर छोड़ना पड़ा। अपने कार्य में वह आगे ही बढ़ती रही। अपने व्यवसाय में आगे बढ़ते हुए फेनिक्स कंपनी के मालिक सेटलवाड से उसकी भेंट होती है। निरंतर संघर्ष करते हुए अंजनी सफलता प्राप्त करती है। मुंबई में रहते हुए अंजनी की कोंकणी में मराठी, हिंदी भाषा भी घुलने लगती है। जनार्दन गौरीश नेवरेंकार उर्फ जॉन उसके प्यार में पागल होता है। उसकी 'ट्रायंक पब्लिसिटी' कंपनी है। जनार्दन उर्फ जना या जॉन के अंदर के गुणों को अंजनी पहचानने लगती है।

अंजनी 'जना' की सृजनशीलता को सही मोड़ देती है। उसे पहचानती है, और उजागर करने में सहयोग देती है। पालक पिता सेटलवाड की सीख पर जनार्दन से विवाह करती है। गोवा की धरती पर आकर दोनों प्रकृति में खो जाते हैं। माता-पिता बनकर अपनी बेटी के साथ खुश रहते हैं। घर से बाहर काम करनेवाली औरतों की घर और व्यवसाय संभाल सकने की संतुलित कथा इस उपन्यास में व्यक्त हुई है।

काळी गंगा के लेखक महाबळेश्वर सैल हैं। इनकी कोंकणी भाषा में कारवार प्रदेश की मिट्टी की गंध है। अपने प्रदेश के लोगों की कहानी, उसी प्रदेश की संस्कृति, समाज आचार-विचार उसकी परंपरा, उसी में प्रतीत होता नयापन बदलते संदर्भों में व्यक्त करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। यह मूलत: दो बहनों की कथा है, जिनके नाम हैं मंजुळा और सुमन। माँ का जब देहांत हुआ उस समय बड़ी बहन मंजुळा की उम्र थी नौ वर्ष की और सुमन थी सिर्फ तीन माह की। वैसे देखा जाए तो मंजुळा भी बच्ची ही है पर माँ की मृत्यु के बाद बड़ी बहन होने के नाते ज़िम्मेदारी स्वरूप माँ का रूप धारण कर लेती है। पिता का ख्याल, घर का काम, बाहर का व्यवहार, समाजाचार और छोटी बहन सुमन की पूरी देखभाल मंजुळा के व्यक्तित्व का हिस्सा ही बन जाते हैं। लेखक इन्हीं दो बहनों के माध्यम से ***काळी गंगा*** उपन्यास में अन्य पात्रों को चित्रित करते जाते हैं। 'काली गंगा' नदी, जो कि दोपहर में सूर्य की धूप में चाँदी की तरह चमकती है वही शाम के और घनी रात

के अंधेरे में कागज को लेकर बहती नज़र आती है। खारगे गाँव तक तो वह शांति से बहती है पर शिद्दर गाँव तक आते-आते वह विकराल रूप धारण कर लेती है। दो द्वीप बनाते हुए वह धारा कभी नृत्य करती हुई तो कभी रात के अंधेरे में नागिन की तरह बलखाती हुई और भी विकराल लगने लगती है। समय बीतता जाता है। मंजुळा की शादी हो जाती है तब सुमन समझदारी के साथ घर की व्यंवस्था संभाल लेती है। मंजुळा के रहते हुए सुमन ने पढ़ाई भी की थी। उस दौरान उसका एक मित्र था गोविंद। उसी के साथ वह बचपन से यौवन में भी कदम रखती है। पड़ोस में ही सुमित्रा चाची भी रहती है। वैसे तो गाँव में सब मिलजुलकर रहते हैं। मंजुळा की शादी हो जाती है, पाँच साल में पिता गणेश की मृत्यु हो जाती है। ससुराल में फौजी पति के साथ मंजुळा दो बच्चों की माँ बन जाती है। पति फौज में चला जाता है। घर का और खेती का काम करते-करते वह बूढ़े ससुर की सेवा भी करती है पर कृषकाय वह ज़्यादा समय नहीं बच पाती और उसका देहांत हो जाता है। बच्चे सुमन मौसी के पास आकर रहने लगते हैं। अकेली सुमन को सगे संबंधी अपने-अपने तरीके से नोचने लगते हैं। जोतने के लिए खेत लेकर उसे निगल जाते हैं। सुमन जब बची हुई ज़मीन पर खेत जोतने लगती है तो सब गाँववाले विरोध करने लगते हैं। गोविंद अपनी बालसखी की मदद करता है पर उसकी सखी को असमय ही बड़ी बहन के बच्चों की माँ के रूप में देखकर परेशान हो जाता है। गोविंद के मामा एवं बड़े भाईयों को यह पसंद नहीं है। मामा बेऔलाद है और गोविंद को दत्तक लेना चाहते हैं। धन के लालच में बड़े भाई भी चाहते हैं कि गोविंद मामा की इच्छा के विरुद्ध न जाए। सुमन का ख्याल छोड़ दे। पर गोविंद को यह सब पसंद नहीं है। जब गोविंद के बड़े भाई ज़बरदस्ती गोविंद को ले जाते हैं तो काली नदी को पार करते समय मंझधार में पहुँचते ही वह पानी में छलांग लगा देता है। सुमन को जब पता लगता है ता कौमार्य अवस्था में ही वैधव्य स्वीकार कर लेती है। उसका अंतिम वाक्य है- "गोविंद ! मैं तो तुम्हारे साथ जीवन बिताकर सुहागन की मृत्यु चाहती थी पर मेरे नसीब में कुंआरी विधवा बनकर जीना लिखा था" (पृष्ठ 280) यहीं पर उपन्यास समाप्त होता है।

अब तक के तीनों उपन्यास नारी पर केंद्रित थे जिसे पुरुष रचनाकारों ने चित्रित किया था पर अब अर्थात 1997 में और 1998 में क्रम से ***भोगदंड*** और ***पाषाणकळी*** (पाषाणकली) हेमा नायक और ज्योतिकुंकळकार की रचनाएँ स्त्री

द्वारा, स्त्री की समस्या या स्त्री दृष्टि को लेकर कोंकणी उपन्यास साहित्य में व्यक्त होती हैं।

कार्मेलीन की तरह ही ***भोगदंड*** भी 'क्लास' द्वारा 'मास'- को नीचा दिखाने की या चित्रित करने की एकालापी कृति बन गई है। हेमा नायक जिस गाँव की स्थापना करती है उस गाँव की समस्या तो असली है पर उस गाँव का सामाजिक-सांस्कृतिक लेन-देन गोवा के संदर्भ में, गोवा की धरती पर जो सामाजिक संस्कृति पनप चुकी है उसके 'कार्निव्हलीकरण' तक नहीं पहुँच पाया। ***अंजनी*** में अपने समाज की कथा में लेखक एच. रत्नाकर राव इन धागों को बुनने में ज़्यादा सफल हुए हैं। हेमा नायक की कृति ***भोगदंड*** इस अर्थ में 'दूसरे समाज' के संकीर्ण दायरे में घूमती रहती है। मैंने पहले ही लिखा है कि 'उस स्थापित गाँव की समस्या असली है'- वह इस अर्थ में कि गाँव में आर्थिक समस्या सुलझाने गाँव के लड़के गोवा से बाहर, कुवैत, बेरिन या अन्य खाड़ी देशों में जाते हैं। कार्मेलीन कादंबरी में कार्मेलीन जैसी औरतें जाती हैं तो ***भोगदंड*** में उसी तरह 'लेज़ली' को जाना पड़ता है। 'लेज़ली' इस गाँव का सादा सीधा लड़का है जो गिटार बजाकर अपनी बेकारी का दुख हल्का करता है।

मेरे प्रिय गाँववासी/हराभरा बाग कुम्हला रहा है/रुपयों के अंबार पर मेरा कलेजा जलता है (पृष्ठ 9)

बाज़ार में बैठकर जैसे लेज़ली अपने भाइयों से प्रश्न पूछ रहा है धन के मोह में अंधे होकर उस कुँए में छलांग लगाकर परदेश जानेवालो, गाँव में धन की रेलपेल होते हुंए भी चिंता गाँववालों के कलेज़ों को जलाती है। विदेशी कपड़े पहनकर, इत्र लगाकर गाँव के बाज़ार में ज़्यादातर औरतें ही- जवान, बूढ़ी आती हैं क्योंकि गाँव के लड़के तो 'दिनार' या 'रियाल' कमाने बाहर गए हैं पर पूरे गाँव में जो कि एक द्वीप है, टापू है उसमें सिर्फ क्रिश्चियन लोग ही रहते हैं। और यहीं पर इस टापू की सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। समाज कोई भी हो, आर्थिक समस्या सुलझाने सिर्फ क्रिश्चियन ही बाहर जाते हैं ऐसा नहीं है। किसी भी समाज में यह समस्या हो सकती है तो उस 'स्थापित गाँव' के दुर्भाग्य पर सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों पर सोचना ज़रूरी हो जाता है। इन संदर्भों को छोड़कर गाँव की समस्या पर सोचें तो लेज़ली जो गाना गा रहा है, उसमें तथ्य भी है और दर्द भी है। पाँच सौ परिवारों के इस क्रिश्चियन गाँव में रोमन केथॉलिक लोगों की संख्या ज़्यादा

2960 HRD/06—4A

है। रुपयों की रेलपेल पूरे गाँव में फैली है। यहाँ हिंदुओं के घर गिनेचुने ही हैं। किसी संदर्भ के बिना कोई एक दूसरे के घर जाता ही नहीं। कथा क्रिश्चियन परिवारों में ही चक्कर काटती रहती है। छोटे-से गाँव में तीन बैंक हैं। उनमें अच्छी खासी जमापूँजी भी है। बैंकों में ड्राफ्ट आते रहते हैं, हुंडी लेकर एजेंट आते हैं। गाँववालों को बीस के ऊपर गिनती नहीं आती पर कमाई लाखों करोड़ों में आती है। एस.एस.सी. पास होकर ही गाँव का युवावर्ग डॉलर, दिनार, रियाल कमाने की योजना बनाता है। शिक्षा के नाम पर इतना ही काफी है। लेज़ली इसमें एक अपवाद है। वह बाहर जाकर कमाना नहीं चाहता पर गाँव में रहकर कमा भी नहीं रहा। हररोज़ सुबह बाज़ार के चौराहे पर गिटार बजाकर 'कांतार' अर्थात गाना गाता है। उसकी माँ आंतोनेत चाहती है कि उसका बेटा भी बाहर जाए और डॉलर या दिनार कमाए।

लेज़ली गाँव छोड़कर जाना नहीं चाहता। अपनी ही पड़ोसन फिलोमेना के घर में जो नज़ारा दिखाई देता है उससे वह खुश नहीं है। रोज़ रात को फिलोमेना अपने दोस्तों को पार्टी के नाम पर बुलाती है, स्वच्छंद वातावरण में स्वेच्छाचार होता रहता है। सामाजिक पार्टी के सामाजिक तौर-तरीके होते हैं। पर यहाँ तो अनाचार ही पनपता है। पति बाहर हैं तो पत्नियाँ गुलछर्रे उड़ा रही हैं और पत्नी बाहर हैं तो पति दूसरी लड़कियों के साथ मस्त हैं। कैसा है यह जीवन? रुपया है पर उसकी सही हिफ़ाजत नहीं! परिवार हैं पर उसकी पारिवारिकता पर प्रश्न चिह्न लग गया है। सुख के साधन हैं पर शांति नहीं। लेखिका शायद 'दूसरे' समाज के बारे में यहीं पर चेतावनी की घंटी बजाना चाहती है। उस समाज का यह कैंसर गाँव में पसर चुका है। रचनाकार का यह संसार द्वितीय स्तर का अनुभव है। 'मैं' उस समाज से कहीं बाहर है। रचनाकार को संवेदन कहीं से भी प्राप्त हो सकते हैं पर इस स्थापित गाँव में अगर पात्र-गीत, अमर, वेंकटेश, सुलताना, हमीद होते तब भी गाँव का वातावरण वही होता जो अब है। अगर जीवन में सिर्फ भोग ही है, कर्तव्य, त्याग, ज़िम्मेदारी नहीं है तो उसका दंड चुकाना ही पड़ता है। चाहे वह समाज किसी भी जाति या धर्म का हो उसकी नियति वही होती जो ***भोगदंड*** की है।

लेज़ली माँ के सपनों को पूरा करने के लिए ज़ेमा के साथ शादी करके उसे माँ के पास छोड़कर रुपए कमाने बाहर जाता है। फिलोमेना की कहानी अब ज़ेमा द्वारा भी दोहराई जाती है। प्रेम किसी और से शादी किसी और से। शादी के बाद

भी ज़ेमा और उसका प्रेमी मिलते रहते हैं। माँ आंतोनेत इसका विरोध करती है पर नतीजा कुछ नहीं निकलता। ज़ेमा कहती है, मेरा प्यार रोबीन है और रुपया लेज़ली है। उसी के रुपयों से दोनों घर भी बनवाते हैं और ज़ेमा लेज़ली का घर छोड़कर नए घर में रहने भी चली जाती है। एक पति के रूप में कभी लेज़ली, ज़ेमा पर अपना हक नहीं जताता। वह बस अंधा प्यार करता है। कुवैत से वापस आने पर वह अपने रुपयों से बने घर में बेगाना बन जाता है। अपनी शादी की अँगूठी वहीं टेबल पर रखकर वह वापस अपने पुराने मकान में चला जाता है। बूढ़ी आंतोनेत बेटे के दुख में ही मर जाती है और लेज़ली की हालत-

आज शनिवार है। बैंक का आधा दिन। लेज़ली अपनी पासबुक लेकर आता है। कैशियर देसाटा कहते हैं उसके खाते में सिर्फ पाँच रुपए बचे हैं। लेज़ली अपना खाता बंद करवाकर पाँच रुपए ले जाता है। गिटार के तार ठीक करवाता है और चबूतरे पर जाकर कांतार करता है- गाना गाता है-

मेरे प्रिय भाइयो,
तमाशा देखो रुपयों का
गुम हो गए सब अंधेरों में,
अपने और पराए।
मेरे प्रिय भाइयो,
विधि का फरमान देखो अदृष्ट
दंड के रूप में मिला दुख
और किसी को मिला सुख

आर्थिक और मानवीय मूल्यों के बिखराव में उस स्थापित गाँव के लोग भोगदंड भोग रहे हैं।

पाषाणकळी अनुष्का की कहानी है। बिना प्यार के लेज़ली को भोगदंड मिलता है तो अनुष्का पाषाणकळी (पाषाणकली) बन जाती है। मनुष्य और प्यार एक दूसरे की आवश्यकता हैं। बिना प्यार के उसे पत्थर बनते देर नहीं लगती। अनुष्का के माता-पिता के पास धन-दौलत की कमी नहीं है, प्यार के मामले में वे कंगाल हैं। मिस्टर एंड मिसेस ऋषिकेश शर्मा, अनुष्का, उसकी छोटी बहन कश्मीरा और घर का नौकर रामेश्वर भैया अपनी-अपनी दुनिया में हैं। दिल्ली छोड़कर जब अनुष्का गोवा आती है तो मौसी सीमा, मौसा मयूर, इनकी बेटी डॉली। इनके परिवार में

काम करती यमुनाबाई। गोवा में नौकरी करते हुए ऑफिस में काम करनेवाले लोग। इनमें रोहित एक ऐसा पात्र है जो अनुष्का को चाहता है। पर अनुष्का का प्यार तो मयूर है। दिल्ली से निकलते समय रामेश्वर भैया लाख समझाते हैं कि माता-पिता की गैरहाजिरी में मत जाओ पर अनुष्का निकल पड़ती है। स्टेशन पर एजेंट से मिसेस तनेजा के नाम का टिकट खरीदती है। मिस्टर तनेजा भी जाली नाम से ही सफर करते हैं। ट्रेन में बैठते ही मिसेज तनेजा यानि कि अनुष्का की यात्रा भूतकाल में घूमते हुए, भागते वर्तमान की गति को पकड़ने की कोशिश में उलझती रहती है। घर से बाहर तो आई पर कोई ठोस कार्यक्रम उसके पास है ही नहीं। बहरहाल उपन्यास में, रेलवे की पटरी पर जीवन की पटरी का तानाबाना जुड़ता जाता है। पापा, मम्मा और छोटी बहन कश्मीरा के व्यवहार से वह खुश नहीं रह पाती। चारों एक-दूसरे से जैसे अजनबी हैं। जहाँ रुपया पैसा ही, हर चीज का मापदंड हो वहाँ भावना कोई मायने नहीं रखती। बेटी स्वेटर बनाती है पापा के लिए, पर वह दे दिया जाता है रामेश्वर भैया को। इस घर में कुत्ते के पीछे बीस हज़ार का खर्च करने का स्टेटस सिंबल है। पार्टी देने में बड़प्पन है। अनु की सहेली निवेदिता को कोई नहीं पूछता। पापा अच्छे उद्योगपति तो बने पर अच्छे मनुष्य नहीं बन पाए। (पृ. 23)

अनुष्का की समस्या में छोटी बहन कश्मीरा भी उतनी ही जिम्मेदार है। उसे बड़ी बहन बेकवर्ड लगती है। फॉरवर्ड विचारोंवाली बहन जब गर्भवती हो जाती है तो मम्मा कहती है- "गर्भवती होने तक यह लड़की क्या करती थी? इतने सारे उपाय हैं- एक भी करते नहीं बना?- (पृ. 30) अर्थात् शादी से पहले शारीरिक संबंध तो रखे जा सकते हैं पर गर्भवती बनना वांछित नहीं है। हर संबंध यहाँ पर खरीदा जा सकता है। 'सर्वेगुणा: कांचनं आश्रयंते' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए ऋषभदेव शर्मा परिवार के तीनों सदस्य दौलत के बल पर ही सबकुछ खरीदना जानते हैं। पार्टी जितनी महंगी होगी उतनी मशहूर भी होगी। अनुष्का ऊब चुकी है ऐसी खोखली ज़िंदगी से। ट्रेन दौड़ रही है और अनुष्का के मस्तिष्क में भूतकाल दौड़ रहा है। कोंकण रेलवे के कारण यात्रा भी सुखद हो गई है। सीमा मौसी अपनी कार चलाकर भानजी को लेने आती है। मौसी और उनकी बेटी डॉली दोनों अनुष्का को बहुत चाहते हैं। मयूर मौसा धंधे के कारण टूर पर गए थे। अपने मौज-मस्ती भरे स्वभाव के कारण मयूर अनुष्का के दिल में उतर जाता है। वह उसे

कंपनी में नौकरी भी दिलवाता है। रोहित से परिचय भी करवाता है, घुमाने भी ले जाता है। आगे अनुष्का को अपने ही मौसा से प्रेम हो जाता है। उससे संबंध सुख भी पाती है, गर्भवती भी बनती है। कश्मीरा से चिढ़नेवाली अनुष्का, कश्मीरा के फॉरवर्ड विचारों जैसी ही हरकत करती है। सीमा मौसी इस तूफान से बेखबर है। इतने में दिल्ली से मम्मा का फोन आता है कि छोटी बहन कश्मीरा का कार एक्सीडेंट हुआ है और घटनास्थल पर ही उसकी मौत हो गई है। अनुष्का दिल्ली पहुँचकर मम्मा-पापा को सांत्वना देती है। थोड़े दिनों में चलने को तैयार होती है तो मम्मा का कहना है अब तो सबकुछ तुम्हारा ही है। घर छोड़कर क्यों जा रही हो? अनुष्का का कहना है कि जो आज तक मेरा नहीं था उस पर अब मेरा अधिकार कैसे हो सकता है? आपने कभी अपना समझा ही नहीं। वह घर छोड़कर चली जाती है।

पूरी कांदबरी में अनुष्का ही नहीं पूरे परिवेश में पात्रों का चरित्र-चित्रण और कहानी विरोधाभासों से भरी पड़ी है। कली के पाषाण बनने की कोई सकारात्मक भूमिका तैयार नहीं होती। सामाजिक बंधनों को नकारते हुए अपने मौसा से ही प्रेम करती है। गर्भावस्था प्राप्त होती है तो अपने को शापित क्यों मानती है (पृ. 173) उसने जिस अवस्था में मयूर से शारीरिक संबंध जोड़ा, उसी अवस्था से गर्भावस्था प्राप्त हुई तब उसके बेकवर्ड विचारों का क्या हुआ? कश्मीरा की अवस्था का विरोध करते हुए अनुष्का भी वही करती है और वह भी मौसा के साथ शयनसुख लेकर उसी क्षण के जीवन को जीने का फैसला करती है। साथ में मयूर से कहती है कि "मुझे किसी के पति का विभाजित रूप नहीं चाहिए।" (पृ. 173)। तो फिर किसी और के पति के साथ संबंध क्यों जोड़ा? जब अनुष्का मयूर के साथ शयनसुख लेती है तब भी वह तो सीमा मौसी का पति है। वास्तव में अनुष्का आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ी होकर भी मानसिक रूप से संतुलित नहीं रह पाती। स्वतंत्रतापूर्वक सोच नहीं पाती। उसके चित्रण में, रचनाकार अनुष्का को हड़बड़ीवाली ही चित्रित कर पाई है। जिस फ्रेम को तोड़ने की चाह है उसी फ्रेम में घुसते जाने की चाह है। जिस बिंदु से कहानी शुरू होती है, उसी के विरोधाभासी चक्रव्यूह में घूमते रहने की कथा है। शायद इसीलिए अंत में अनुष्का कलकत्ता के आश्रम में जाकर सिस्टर को अपनी कहानी सुनाती है। अपने आपको दोषी भी मानती है। अपने प्रश्नों का

समाधान खोज नहीं पाती। इसमें कौन-सी परंपरा टूटती है? खैर, पाषाणकली की यही परंपरा है और यही उसकी पाषाणता भी है।

कोंकणी उपन्यास यात्रा में उपरोक्त उपन्यासों के बाद ***शक्तिपात*** एक ऐसा उपन्यास है जिसमें अध्यात्म और वास्तविकता का चित्रण दृष्टव्य होता है। असामान्य तत्वों के पास जाने की सामान्य मनुष्य की यह कहानी है। अवधूत कुडतडकार ने मराठी में कविता संग्रह और ***दिगंबरा*** कादंबरी लिखी है। ***शक्तिपात*** में दिगंबर एक ऐसा चरित्र है जो बचपन से कुत्ते से भी डरता था। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है वैसे-वैसे जीवन और प्रकृति से, व्यावहारिक संबंधों से बहुत सारी बातें सीखता है। अपने बड़े भाई की मृत्यु पर शमशान वैराग्य का भी अनुभव करता है। पढ़ाई में आगे निकलने पर भी नौकरी न मिलने पर विष खाकर मरने की भी सोचता है। गोवा मुक्ति के बाद ज़मीदारी के कामों में लोगों द्वारा सताए जाने पर न्यायालय के दरवाज़े के चक्कर काटता है। कानून की अंधी देवी से न्याय न मिलने पर पैसा कमाने के लिए छोटा-सा पुस्तकालय खोलकर,उस से दो-दो रुपए कमाता है। एक दो लड़कियों से प्यार का चक्कर भी चलता है पर ग़रीब प्रेमी के हाथ में सिर्फ प्रेम बच जाता है, प्रेयसी की शादी किसी धनवान से हो जाती है। अपना ग़म भूलने के लिए वह सिगरेट फूँकने लगता है। उसका पत्रकार दोस्त हेमंत भी उसका साथ देता है। अपने दोस्त से वह कहता है कि "तुम इस जन्म में कुछ नहीं कर पाओगे, बिलकुल डरपोक हो तुम" (पृ. 156)

सही मायनों में देखा जाए तो ***शक्तिपात*** का नायक व्यावहारिक भी नहीं बन पाता। उसकी यात्रा तो असामान्य तत्वों की ओर बढ़ने की और अपनी असफलता की स्वीकृति की कहानी है। साथ में गोवा मुक्ति को भी जोड़ा गया है। साथ-साथ स्वतंत्र भारत की राजकीय गड़बड़ी भी बयान होती है। स्वतंत्रता सैनिकों को सताया जाता था और चोरी और स्मगलिंग करने वालों को 'जयहिंद' वाला समझा जाता था। (पृ. 51) सही अर्थों में जो गोवा मुक्ति आंदोलन में शरीक थे वे तो अंधेरे में ही रहे। चोर, स्मगलर नेता बन गए जिन्हें अपने वोटबैंक के अलावा कुछ दिखता ही नहीं। दिगंबर ने अपनी पत्रकारिता के व्यवसाय में एक बार नेता से प्रश्न पूछे थे पर नेता जवाब नहीं दे पाए थे! हमारी कथा का नायक खुद्दार है पर किस डोर को कब खींचना है, कितनी खींचना है यह बात उसकी समझ में कभी आई ही नहीं। पैसेवाले दूसरों को उल्लू बनाते हैं और बिजनेस कहते हैं। नायक तो बस दिगंबर दिगंबर

ऽऽ श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा करते-करते सामान्य से असामान्य तत्वों की ओर प्रयाण करता है। दत्त प्रभु की छाया में डोलता रहता है। उसकी भक्ति में श्रद्धा है, अंधश्रद्धा नहीं है। मठ, मंदिरों में गलत प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उस पर उँगली उठाने का काम वह करता है। कैवल्यानंद स्वामी के मठ में जब उसे पता लगता है कि स्वामी जी ने रखैल से संबंध रखा है (पृ. 187) तो दिगंबर सोचने लगता है कि अगर मैंने ध्यान नहीं रखा तो मैं भी ऐसे ही अपनी राह भूल सकता हूँ। (पृ. 187)

शक्तिपाताचा महामेरू। बहुत जनासी आधारू,
ब्रह्मस्थितिचा निर्धारू। श्रीमंत योगी। (पृ. 193)

अर्थात समस्त संसार की मूलशक्ति चिद्शक्ति है। हर मनुष्य में, अंश में वह विद्यमान है। अनंत शक्ति का यह अंश स्वयं संवेद्य है और उसका अनुभव सिर्फ योग मार्ग से ही संभव है। सिर्फ सद्गुरु ही शक्ति को अपने योग्य शिष्य में संक्रमित कर सकता है। बाद में साधक की अपनी आत्मिक शक्ति जागृत कर पाता है।

लेखक अवधूत कुडवतडकार अपने समाज की बुराइयों को भी उजागर करते हैं। जातिप्रथा, देवदासी प्रथा, बेईमानी, सामान्य मनुष्य की बेबसी पर भी दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है। आज तक कोंकणी का रचनाकार दूसरों के समाज में क्या हो रहा है यह तो दर्शाता था पर अपने समाज के बारे में बोलने का साहस ***कार्मोलीन, भोगदंड, पाषाणकळी*** के रचनाकारों के पास नहीं है। ***काळीगंगा*** में थोड़ा बहुत प्रयत्न हुआ है पर ***शक्तिपात*** में यह प्रयत्न ज़्यादा सराहनीय रूप से हुआ है। उदाहरण के तौर पर जातिप्रथा के बारे में डॉक्टर के विचार देखें (हिंदी भावार्थ)-

"दिगंबर, तुम्हें भी म्हापसा की हवा लग गई क्या? पहले तुम चमार को घर ले आए, अब क्रिश्चियन को लाए हो। अरे भाई, तुम्हें सब ऐसे ही दोस्त मिलते हैं? यह ब्राह्मणों का घर है। वास्तु देवता को यह सब नहीं चलेगा। दो दिन के अंदर ही तुम्हें यह कमरा खाली करना होगा।" (पृ. 76)

दिगंबर सोचता है कि यह डॉक्टर अपने पेशंट्स की जाति पूछकर दवा देता है? क्या रक्त की जाँच करने पर पता चलेगा कि यह ब्राह्मण का है या हरिजन का? (पृ. 76) देवदासी की प्रथा के बारे में भी लेखक सोचता है कि हम देवदासी की लड़की को गलत निगाहों से क्यों देखते हैं? उसका गुनाह यही है कि वह देवदासी

की लड़की है? समाज के बदलते संदर्भों को लेकर भी कहीं-कहीं खिलवाड़ चल रहा है। उसका चित्रण भी पृ. 62 पर किया गया है। जहाँ-जहाँ अनुचित दिखाई दिया उस पर सजग रचनाकार द्वारा उन तत्वों को उजागर करने की कोशिश दृष्टव्य होती है। अंत में हमारा नायक गुरु स्मरण करते-करते ध्यान में बैठता है-

अखंडं मंडलाकारं व्याप्तं येन् चराचरम्।

तत् पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरवे नमः (पृ. 195)

प्रार्थना करते-करते ही भौतिक सुखों को बिसराकर आंतरिक संसार की महाशक्ति के प्रकाश को देखता रहता है.... अपने आपको दत्तात्रेय की इच्छा पर छोड़ देता है।

शक्तिपात में कोंकणी, कन्नड, मराठी, हिंदी भाषा के शब्द आए हैं साथ ही पुर्तगाली भाषा के शब्द भी हैं। रेंदाक = भाड़ेपर, आमीग = मित्र, दोतोर = डॉक्टर, केस्तांवा = झगड़ा, रेकाद = संदेश, काबार = खत्म, सेग्रेद = सिक्रेट, आदोगाद = वकील, पात्रांव = मालिक-ये सब उसी भाषा के शब्द हैं। इसी तरह कन्नड भाषा के शब्द भी हैं, जैसे "नीर बेकू" = पानी चाहिए, "निन्ना उटा माडती" = खाना तैयार है?।

मालवणी मराठी भाषा का प्रभाव पृ. 37 से लेकर 41 तक देखा जा सकता है। आध्यात्मिक शब्दावली की भरमार भी स्वाभाविक ही लगती है क्योंकि शीर्षक ही उस बात का संकेत करता है। ***कार्मेलीन*** से लेकर ***शक्तिपात*** तक कोंकणी उपन्यासों में विविध भाषा प्रयोग विषय और पात्र अनुरूप ही हुए हैं जिनका ज़िक्र भी प्रसंगानुरूप ही किया गया है।

शक्तिपात कहानी में एक बात खटकती है, वह यह कि हमारा नायक उचित संघर्ष नहीं करता। मुश्किलों का सामना करते हुए संघर्ष न किया जाए तो परिणाम सकारात्मक नहीं हो सकता। पहले कर्मवाद बाद में दैववाद आना चाहिए। व्यक्ति संघर्ष, वर्ग संघर्ष करना मनुष्य का ध्येय होना चाहिए। दिगंबर का चरित्र-चित्रण जिस तरह से हुआ है उसमें वह दैववाद की ओर पहले झुकता है, बाद में कर्मवाद की ओर जाता है तो उसका अध्यात्म की ओर झुकाव अध्यात्म से पलायन लगता है। खैर, इतना कुछ होते हुए भी कोंकणी उपन्यासों में अध्यात्म और वास्तविकता की अलग पहचान बनाने में ***शक्तिपात*** अपना योगदान देता ही है।

राष्ट्रीय साहित्य प्रवाह में जब कोंकणी साहित्य पर सोचा जाता है तब बहुत

सारे शैलीगत, कथ्यगत, विषयगत पहलुओं में कोंकणी साहित्य, तुलनात्मक रूप से पिछड़ा हुआ ही लगता है। फिर भी अपने विकासात्मक रूप में वह आगे बढ़ रहा है। सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक और मनोविश्लेषणात्मक, बालमानस पर आधारित उपन्यास, जिसे वैज्ञानिक गतिविधियों का उपन्यास कहते हैं, वैसे विषयों पर अभी कोंकणी में कार्य हुआ ही नहीं है। फिर भी भविष्य की ओर आशावादी रहना उचित लगता है। कोंकणी उपन्यास बाल्यावस्था में ही कहा जाएगा। नागरी लिपि के कोंकणी साहित्य के लिए नया वातायन जरूरी है।